नियमसारकी ५३वीं गाथा और उसकी व्याख्या एवं अर्थपर अनुचिन्तन

प्राथमिक वृत्त

आ० कुन्दकुन्दका नियमसार जैन परम्परामें उसी प्रकार विश्रुत एवं प्रसिद्ध प्राकृत ग्रन्थ है जिस प्रकार उनका समयसार है। दोनों ग्रन्थोंका पठन-पाठन और स्वाध्याय सर्वाधिक है। ये दोनों ग्रन्थ मूलतः आध्यात्मिक हैं। हाँ, समयसार जहाँ पूर्णतया आध्यात्मिक है वहाँ नियमसार आध्यात्मिकके साथ तत्त्वज्ञान प्ररूपक भी है।

समयसार, प्रवचनसार और पंचास्तिकाय इन तीनपर आ० अमृतचन्द्रकी संस्कृत-टीकाएँ हैं, जो बहुत ही दुरूह एवं दुरवगाह हैं। किन्तु तत्त्वस्पर्शी और मूलकार आ० कुन्दकुन्दके अभिप्रायको पूर्णतया अभिव्यक्त करनेवाली तथा विद्वज्जनानन्दिनी हैं। नियमसारपर उनकी संस्कृत-टीका नहीं है। मेरा विचार है कि उसपर भी उनकी संस्कृत-टीका होनी चाहिए, क्योंकि यह ग्रन्थ भी उनकी प्रकृति एवं रुचिके अनुरूप है।

इसपर श्री पद्मप्रभमलधारिदेवकी संस्कृत-व्याख्या उपलब्ध है, जिसमें उन्होंने उसकी गाथाओंकी संस्कृत-व्याख्या तो दी है। साथमें अपने और दूसरे ग्रन्थकारोंके प्रचुर संस्कृत-पद्योंको भी इसमें दिया है। उनकी यह व्याख्या अमृतचन्द्रकी व्याख्याओं जैसी गहन तो नहीं है, किन्तु अभिप्रेतके समर्थनमें उपयुक्त है ही।

प्रसंगवश हम नियमसार और उसकी इस व्याख्याको देख रहे थे। जब हमारी दृष्टि नियमसारकी ५३वीं गाथा और उसकी संस्कृत-व्याख्यापर गयी, तो हमें प्रतीत हुआ कि उक्त गाथाकी व्याख्या करनेमें श्रीपद्मप्रभमलधारिदेवसे बहुत बड़ी सैद्धान्तिक भूल हो गयी है। श्रीकानजी स्वामी भी उनकी इस भूलको नहीं जान पाये और उनकी व्याख्याके अनुसार उक्त गाथाके उन्होंने प्रवचन किये। सोनगढ़ और अब जयपुर से प्रकाशित आत्मधर्ममें प्रकट हुए उनके वे प्रवचन उसी भूलके साथ प्रकाशित किये गये हैं। सम्पादक डॉ० पं० हुकमचन्दजी भारिल्लने भी उनका संशोधन नहीं किया। सोनगढ़से ही प्रकाशित नियमसार एवं उसकी संस्कृत-व्याख्याका हिन्दी अनुवाद भी अनुवादक श्री मगनलाल जैनने उसी भूलसे भरा हुआ प्रस्तुत किया है।

ऐसी स्थितिमें हमें मूल गाथा, उसकी संस्कृत व्याख्या, प्रवचन और हिन्दी अर्थपर विचार करना आवश्यक जान पड़ा। प्रथमतः हम यहाँ नियमसारकी वह ५३ वीं गाथा और उसकी संस्कृत-व्याख्या दे रहे हैं—

सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।
अंतरहेऊ भणिदा दंसणमोहस्स खयपहुदी ॥५३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'अस्य सम्यक्त्वपरिणामस्य बाह्यसहकारिकारणं वीतरागसर्वज्ञ-मुखकमलविनिर्गतसमस्त-वस्तुप्रतिपादनसमर्थद्रव्यश्रुतमेव तत्त्वज्ञानामिति । ये मुमुक्षवः तेऽप्युपचारतः पदार्थनिर्णयहेतुत्वात् अन्तरङ्गहेतव इत्युक्ता दर्शनमोहनीयकर्मक्षयप्रभृतेः सकाशादिति ।'—

—नियमसा० टी०, पृ० १०९, सोनगढ़ सं० ।

अनुवादक द्वारा किया गया दोनोंका हिन्दी अनुवाद

गाथा व उसकी इस संस्कृत-व्याख्याका हिन्दी अनुवाद, जो पं० हिम्मतलाल जेठालालशाहके गुजराती अनुवादका अक्षरशः रूपान्तर है, श्री मगनलाल जैनने इस प्रकार दिया है—

'सम्यक्त्वका निमित्त जिनसूत्र है । जिनसूत्रके जाननेवाले पुरुषोंको (सम्यक्त्वके) अन्तरंग हेतु कहे हैं, क्योंकि उनको दर्शनमोहके क्षयादिक हैं ।' (गाथार्थ) । 'इस सम्यक्त्व परिणामका बाह्य सहकारी कारण वीतराग सर्वज्ञके मुखकमलसे निकला हुआ समस्त वस्तुके प्रतिपादनमें समर्थ द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही है । जो मुमुक्षु हैं उन्हें भी उपचारसे पदार्थनिर्णयके हेतुपनेके कारण (सम्यक्त्व परिणामके) अन्तरंग हेतु कहे हैं, क्योंकि उन्हें दर्शनमोहनीयकर्मके क्षयादिक हैं ।' –वही, पृ० १०९ ।

इस गाथा (५३)के गुजराती पद्यानुवादका हिन्दी पद्यानुवाद भी श्री मगनलाल जैनने दिया है, जो इस प्रकार है—

'जिनसूत्र समकित हेतु है, अरु सूत्रज्ञाता पुरुष जो ।
वह जान अन्तर्हेतु जिसके दर्शमोहक्षयादि हो ॥५३॥'

उक्त गाथाकी संस्कृत-व्याख्या, प्रवचन, गुजराती और हिन्दी अनुवादोंपर विचार

किन्तु उक्त गाथाके संस्कृत-व्याख्याकार श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा की गयी संस्कृत-व्याख्या, गाथा तथा व्याख्यापर किये गये श्री कानजी स्वामीके प्रवचन, दोनोंके गुजराती और हिन्दी अनुवाद न मूलकार आचार्य कुन्दकुन्दके आशयानुसार हैं और न सिद्धान्तके अनुकूल हैं । यथार्थमें इस गाथामें आचार्य कुन्दकुन्दने सम्यग्दर्शनके बाह्य और अन्तरंग दो निमित्त कारणोंका प्रतिपादन किया है । उन्होंने कहा है कि 'सम्यक्त्वका निमित्त (बाह्य सहकारी कारण) जिनसूत्र और जिनसूत्रज्ञाता पुरुष हैं तथा अन्तरंग हेतु (अभ्यन्तर निमित्त) दर्शनमोहनीय कर्मका क्षय आदि हैं ।'

यहाँ गाथाके उत्तरार्धमें जो **'पहुदी'** शब्दका प्रयोग किया गया है वह प्रथमा विभक्तिके बहुवचनका रूप है । संस्कृतमें उसका 'प्रभृतयः' रूप होता है । वह पंचमी विभक्ति--'**प्रभृतेः**' का रूप नहीं है, जैसा कि संस्कृत-व्याख्याकारने समझ लिया है और तदनुसार उनके अनुसर्ताओं—श्री कानजी स्वामी, गुजराती अनुवादक पं० हिम्मतलाल जेठालाल शाह तथा हिन्दी अनुवादक श्री मगनलाल जैन आदिने भी उसका अनुसरण किया है । 'पहुदी' शब्दसे आ० कुन्दकुन्दको दर्शनमोहनीय कर्मके क्षयोपशम और उपशम इन दोका संग्रह अभिप्रेत है, क्योंकि कण्ठतः उक्त दर्शनमोहनीय कर्मके क्षयके साथ उन दोनोंका सम्बन्ध है । और इस प्रकार क्षायिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक इन तीन सम्यक्त्वोंका अन्तरंग निमित्त क्रमशः दर्शनमोहनीय-कर्मके क्षय, क्षयोपशम तथा उपशमको बताना उन्हें इष्ट है । अतएव **'पहुदी'** शब्द प्रथमा विभक्तिका बहुबचनान्त रूप है, पंचमी विभक्तिका नहीं ।

अन्तरंग निमित्त बाह्य वस्तु नहीं होती : सिद्धान्त प्रमाण

आचार्य पूज्यपादने सर्वार्थसिद्धि (१-७) में तत्त्वार्थसूत्रके 'निर्देश स्वामित्वसाधन.....' आदि सूत्र (१-७) की व्याख्या करते हुए सम्यग्दर्शनके बाह्य और अभ्यन्तर दो साधन बतलाकर बाह्य साधन तो चारों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गतियोंमें विभिन्न प्रतिपादन किये हैं। किन्तु अभ्यन्तर साधन सभी (चारों) गतियोंमें दर्शनमोहनीय कर्मके उपशम, क्षय और क्षयोपशमको ही बतलाया है। यथा—

'साधनं द्विविधं अभ्यन्तरं बाह्यं च। अभ्यन्तरं दर्शनमोहस्योपशमः क्षयः क्षयोपशमो वा। बाह्यं नारकाणां प्राक्चतुर्थ्याः सम्यग्दर्शनस्य साधनं केषांचिज्जातिस्मरणं केषाञ्चिद्धर्मश्रवणं केषाञ्चिद्वेदनाभिभवः। चतुर्थीमारभ्य आ सप्तम्या नारकाणां जातिस्मरणं वेदनाभिभवश्च। तिरश्चां केषाञ्चिज्जातिस्मरणं केषाञ्चिद्धर्मश्रवणं केषाञ्चिज्जिनबिम्बदर्शनम्। मनुष्याणामपि तथैव।—स० सि० पृ० २६, भा० ज्ञा० पी० संस्क०।

आचार्य अकलङ्कदेवने भी तत्त्वार्थवार्त्तिक (१-७) में लिखा है कि '**दर्शनमोहोपशमादि साधनं बाह्यं चोपदेशादि स्वात्मा वा।**' अर्थात् सम्यक्त्वका अभ्यन्तर साधन दर्शनमोहनीय कर्मका उपशम, क्षय और क्षमोयशम है तथा वाह्य साधन उपदेशादि है और उपादानकारण स्वात्मा है।

इन दो आचार्योंके निरूपणोंसे प्रकट है कि सम्यक्त्वका अभ्यन्तर (अन्तरंग) निमित्त दर्शनमोहनीय कर्मका क्षय, क्षयोपशम और उपशम है। जिनसूत्रके ज्ञाता पुरुष सम्यक्त्वके अभ्यन्तर निमित्त (हेतु) नहीं हैं। वास्तवमें जिनसूत्रके ज्ञाता पुरुष जिनसूत्रकी तरह एकदम पर (भिन्न) हैं। वे अन्तरंग हेतु उपचारसे भी कदापि नहीं हो सकते। क्षायिक सम्यग्दर्शनकी आवारक दर्शनमोहनीय कर्मकी क्षपणाका प्रारम्भ केवलीद्विक (केवली या श्रुतकेवली) के पादसान्निध्यमें होनेका जो सिद्धान्तशास्त्रमें कथन है उसीको लक्ष्यमें रखकर गाथामें जिनसूत्रके ज्ञाता पुरुषोंको भी सम्यक्त्वका बाह्य निमित्तकारण कहा गया है। उन्हें अन्तरंग कारण बताना सिद्धान्त-विरुद्ध है। तथा उनके साथ दर्शनमोहनीय कर्मके क्षयादिका हेतु रूपमें सम्बन्ध जोड़ना तो एकदम गलत और अनुपयुक्त है। वस्तुतः सम्यक्त्वके उन्मुख जीवोंमें ही होनेवाला दर्शनमोहनीय कर्मका क्षय, क्षयोपशम या उपशम उनके सम्यक्त्वका अन्तरंग हेतु है और जिनसूत्रश्रवण या उसके ज्ञाता पुरुषोंका सान्निध्य बाह्यनिमित्त है।

कुन्दकुन्द-भारतीके सम्पादक द्वारा सम्पुष्टि

कुन्दकुन्द-भारतीके सम्पादक डॉ० पं० पन्नालालजी साहित्याचार्यने भी उक्त गाथा (५३) का वही अर्थ किया है जो हमने ऊपर प्रदर्शित किया है। उन्होंने लिखा है—

'सम्यक्त्वका बाह्य निमित्त जिनसूत्र—जिनागम और उसके ज्ञायक पुरुष हैं तथा अन्तरंग निमित्त दर्शनमोहनीय कर्मका क्षय आदि कहा गया है।' इसका भावार्थ भी उन्होंने दिया है। वह भी द्रष्टव्य है। उसमें लिखा है कि 'निमित्तकारणके दो भेद हैं—१ बहिरंग निमित्त और २ अन्तरंगनिमित्त। सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका बहिरंग निमित्त जिनागम और उसके ज्ञाता पुरुष हैं तथा अन्तरंग निमित्त दर्शनमोहनीय अर्थात् मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्वप्रकृति एवं अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ इन प्रकृतियोंका उपशम, क्षय और क्षयोपशमका होना है। बहिरंग निमित्तके मिलनेपर कार्यकी सिद्धि होती भी है और नहीं भी होती। परन्तु अन्तरंगनिमित्तके मिलनेपर कार्यकी सिद्धि नियमसे होती है॥५३॥'—वही, पृ० २०७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपसंहार

इस विवेचनसे स्पष्ट है कि नियमसारके संस्कृत-टीकाकार श्री पद्मप्रभमलधारिदेवने उल्लिखित गाथाकी व्याख्यामें जिनसूत्रके ज्ञाता पुरुषोंको सम्यक्त्वका उपचारसे अन्तरंग हेतु बतला कर तथा उनसे दर्शनमोहनीय कर्मके क्षयादिकका सम्बन्ध जोड़ कर महान् सैद्धान्तिक भूल की है। उसी भूलका अनुसरण सोनगढने किया है। श्रीकानजी स्वामीने श्री पद्मप्रभमलधारिदेवकी इस गाथा (५३) की संस्कृत व्याख्यापर सूक्ष्म ध्यान नहीं दिया। फलतः उनकी ही व्याख्याके अनुसार उन्होंने गाथा और व्याख्याके प्रवचन किये, जो बहुत बड़ी भूल है। गुजराती और हिन्दी अनुवादकोंने भी दोनोंके अनुवाद उसी भूलसे भरे हुए किये।

इन भूलोंका परिमार्जन होना आवश्यक हैं, ताकि गलत परम्परा आगे न चले।

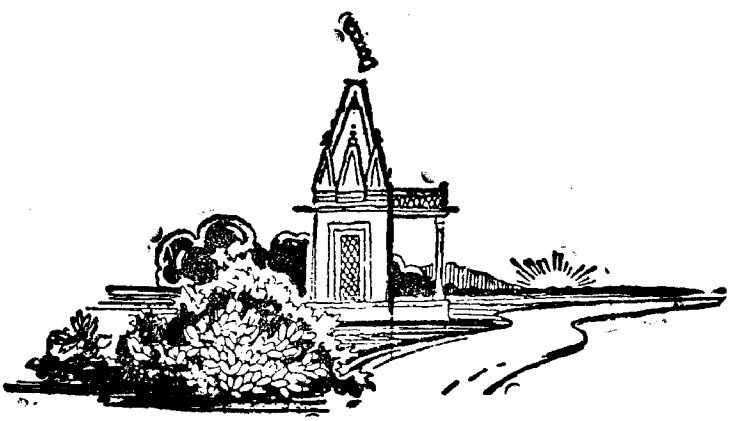

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org